# रंगभारती



मार्च, 1981

## रंगकर्मियों से निवेदन

- कोई भी संघर्षशील पत्रिका केवल राज्याश्रय अथवा बड़े औद्योगिक घरानों के सहारे कभी नहीं चली।
- कोई भी सोद्देश्य पत्रिका राज्याश्रय के अभाव में लड़खड़ा सकती है; लेकिन मर नहीं सकती।
- 'रंगभारती' आपकी अपनी पत्रिका है। इसे आपका संरक्षण चाहिये।

हमारा सभी रंगकर्मियों से निवेदन है कि मात्र बारह रुपये आज ही भेजकर जुलाई, १९८० के अंक से 'रंगभारती' के वार्षिक ग्राहक बन जायें।

- समस्त पुराने सहयोगियों से निवेदन है कि वे अपनी वार्षिक सहयोग-राशि बारह रुपये मात्र [illegible] 'रंगभारती' को पूर्ववत् अपना संरक्षण प्रदान करें।
- रंगभारती [illegible] आपकी रचनायें भी सादर [illegible]
- वार्षिक [illegible] अंतर्राष्ट्रीय, [illegible]

विनीत

डॉ० अज्ञात

संपादक



[illegible]तम नाटक

कोठी साह जी, [illegible] -226003

वर्ष 8 अंक 9

मार्च, 1981

रंगमंच की प्रतिनिधि पत्रिका

संपादक : डॉ० अज्ञात

**प्रधान कार्यालय :**

रंगभारती, कोठी साह जी, मिर्जामण्डी, चौक, लखनऊ-226003

**कानपुर कार्यालय :**

छायालोक, 111-ए/183, अशोकनगर, कानपुर-208012

यह अंक : रु० 1-50 वार्षिक : 12-00 रुपये

मुद्रक : शिव प्रिंटिंग प्रेस, पुराना टिकैतगंज, लखनऊ

---

राजस्थान शासन द्वारा सार्वजनिक पुस्तकालयों, वाचनालयों तथा माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के लिये मान्यता प्राप्त पत्रिका

# रंगभारती

## इस अंक में

# रंगभारती मासिक के स्वामित्व तथा अन्य बातों का ब्योरा

प्रपत्र–चतुर्थ (देखें : नियम–8)

1. प्रकाशन का स्थान : नक्षत्र अंतर्राष्ट्रीय, चौक, लखनऊ-226003

2. प्रकाशन अवधि : मासिक

3. मुद्रक, प्रकाशक का नाम : विवेक चटर्जी, नक्षत्र अंतर्राष्ट्रीय, चौक, लखनऊ-226003

4. क्या भारतीय नागरिक है : हाँ

5. संपादक का नाम : डा० झ० ला० सुल्तानिया 'अज्ञात'
111-ए/183, अशोक नगर, कानपुर-208012

6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझीदार या हिस्सेदार हों : नक्षत्र अंतर्राष्ट्रीय

मैं विवेक चटर्जी, महासचिव, नक्षत्र अंतर्राष्ट्रीय एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक 28, फरवरी, 1981

विवेक चटर्जी
प्रकाशक

# पांचवां सवार
# एक खुला नाटक

—अनूप सेठी

बलराज पंडित के नाटक 'पाँचवाँ सवार' के मंचित होने के साथ ही यह सवाल उठ खड़ा होता है कि पांचवां सवार कौन है? क्या है? इस सवाल का जवाब नाटक में से गुज़रे बिना नहीं मिल सकता। ऊपरी नज़र से देखें, तो नाटक के खुलते ही मद्धिम प्रकाश में चार बूढ़े एक खबर की तलाश कर रहे होते हैं, बल्कि खबर के बहाने एक औरत, औरत नहीं तो औरत का अखबारी किस्सा ही सही। अचानक वे नेपथ्य की ओर जाने के लिए बढ़ जाते हैं कि मंच पर राजनीति का चित्र उभर आता है। युवक के पास कुछ अदद प्रश्न हैं, जिनके उत्तर नेताओं के पास नहीं हैं। उनके पास लड़कों के बीच भाषण देने की योजना है।

इसी के साथ सामने आता है युवक के जीवन का दूसरा पहलू-प्रेम प्रसंग; यही कि कैफे चला जाए, लाईब्रेरी में बैठा जाए। यह भी नहीं, तो शाम को सिगरेट पीते हुए प्रेमिका की प्रतीक्षा को जाए।

इसके एकदम बाद नाटककार ने नए दृश्य में लड़की को उसकी शादी के आठ वर्ष बाद दिखाया हैं। संयोग से लड़का भी उपस्थित हो जाता है, जो अभी तक बेकार है और अनब्याहा भी। फलतः दोनो भावुक हो उठते हैं। लड़का अपने वर्तमान के लिए जिम्मेदार शायद स्वयं को मानता है, इसलिए विगत को याद नहीं करना चाहता, पर आदमी अतीत से बहुत कम जगहों पर अलग छिटक पाता है।

अगले दृश्य में नाटक कालेज लाईफ मे पहुंच जाता है लड़कों की एक ज्वलंत समस्या है—अटेंडेंस शार्ट होने की वजह से छात्र का परीक्षा न दे पाना। मतलब भविष्य के सारे प्रोग्राम हथेली की रेत की तरह फिसलते चले जाते हैं। यह एक ऐसा दृश्य है, जिसकी सम्पूर्णता में कुछ और प्रश्न भी उठाए गए हैं। बाद के दो दृश्य लड़के और लड़की से तो जुड़े ही हैं, पर वैसे घर के भीतर की चीरफाड़ अधिक हैं, जहां एक टूटन और तल्खी के सिवा कुछ नहीं मिलता है।

अन्तिम दृश्य लड़के-लड़की की अलग होने की पूरी घटना का ब्यौरा है और बूढ़ों के लिए एक मसालेदार 'सत्य-प्रेम-कथा'। साइकिल वाला सूत्रधारी मिजाज में सारे नाटक को एक सूत्रात्मकता प्रदान करता है—एक लड़का-लड़की थे। आजकल की ही तो बात है, उन्हें मां-बाप पसन्द नहीं थे······बहरहाल वे पार्क में बैठकर प्यार-व्यार की बातें किया करते थे··········अब तो वे लोग आगे जाते आदमी की तरह धुंधले हो गए हैं,·········उनकी शादी हुए तो बरसों हो गए। पर नाटककार ने, इसे अपने ढंग से प्रस्तुत किया। ज़ाहिर है कि प्रेम प्रसंग फार्मूला कहानी की बजाय अपनी वास्तविकता में आँका गया है। यों तो सारा नाटक ही स्थितियों की सम्पूर्णता में खुला पड़ा है, फिर भी इस तरह के अंत से उसे एक ऐसी तरतीब दी गई है कि घटनाओं की सार्थकता दर्शक के सामने और स्पष्ट हो जाती है।

इस नाटक के चारों सवार परिधि के ऐसे हिस्से हैं, जिनमें से पांचवां गायब है। उसके बिना दायरा पूरा नहीं हो सकता और हर सवार पांचवें के अभाव में अपनी भूमिका की अपूर्णता को झेलता है। यही पाँचवें की तलाश, 'होने' की प्रक्रिया कभी अपनी संज्ञा खो देती हैं, कभी सत्ता स्थापित करती है, फलस्वरूप आदमी अपने को अपूर्णता में उलझा लेता है। अपने सामने भी पड़ना नहीं चाहता। शायद यहीं कहीं इस सवाल का जवाब है, जिसकी तलाश प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष नाटक का प्रत्येक पात्र करता है। चूंकि युवक समस्या के तल तक पहुंचने की कोशिश कर रहा है, इसलिए मंच पर नाटककार ने बास्केट बाल के रूप में समाधानों की बंद पोटली प्रस्तुत की है; पर वह एक, दो, तीन लड़कों के पास लुढ़कती रहती है। युवक उस भूल-भुलैया में भटकता रहता है। लड़की के आते ही गेंद खिलाड़ी को मिल जाती है। इससे सम्भवतः नाटककार लड़के और लड़की की संयुक्त भूमिका से स्थितियों का सामना करने और उन्हें सफलता पूर्वक जी सकने का संकेत देता है। यह विडम्बना ही है कि स्थितियों की चपेट उन्हें सदैव दो ध्रुवों पर ही टिकाए रखनी है। फलस्वरुप जड़ता बढ़ती जाती है।

चारों सवार दो पीढ़ियों को एक अंतराल देते हैं और इसमें से युवक एवं लड़की कुछ स्थितियाँ सामने लाते हैं। अखबार के ज़रिये समाज चर्चित होता है। नाटककार ने मंच और मंचसज्जा को नकारा है। मसलन 'प्रकाश व्यवस्था शुरू में कम है। एक बूढ़ा ही दिखे चाहे वह बोल रहा हो या न बोल रहा हो।' स्पष्ट है कि यहां महत्व भाषा और संवाद का आ जाता है। इन्ही संवादों में टंका हुआ है

समाज, जिसमें एक औरत की खबर ढूंढ़ी जा रही है, जिसका स्वरूप बदलना नुक्कड़ पर या पार्क में कहकहों का कारण बन गया है। घरेलू मामले जब इतने खुले होकर गली मुहल्ले में आ टपकें, तो औरत को कोई भी नाम दे देना बेमानी नहीं है, बेमानी हो गए हैं रिश्ते। मानी रह गया है सिर्फ जिस्म, जिसके नंगेपन के चटखारे चारों बूढ़े अखबार पढ़-पढ़ कर लेते हैं। वह औरत चाहे घर की हो या नुक्कड़ की, इसे संरक्षण पुरुष का ही चाहिए। इस मुद्दे को साइकिल वाला और साफ करता है। वह 'त्रियाचरित्तर, फतवा देता है, पर सबंध इस विन्दु तक आ पहुंचे हैं कि संतुलन बिगड़ गया है। मसलन, 'न तो भागे और न भागने दे, न तो थमने दे और न थामे, इस स्थिति को चारों बूढ़े साइकिल वाले के साथ घूम-घूम कर और गहरा अर्थ देते हैं। इस घूमे जाने की विवशता के बीच ऐसे संवाद बुने गए हैं, जैसे जिंदगी के चलाए चले जाने में बनते हैं, और, 'नाव न किनारे लगती है, न ही डूब सकती है, यह है सम्बन्धों का नुक्कड़ी हो जाना।

इससे अलग एक अभिजात खोखलापन मिलता है घर के भीतर। लड़की के बाप के घर। जहां पुरुष मात्र सहन कर रहा है। हवों में हिलती हुई तस्वीर को पकड़ रहा है। इन्तजार कर रहा है। देख भर रहा है। गहराई से देखा जाए, तो इस देखे हुए को अनदेखा ही कर रहा है। पत्नी का रात-रात भर घर से बाहर रहना, पति-पत्नी का लगातार विस्थापन। तब पति मन की भड़ास को लड़की के साथ बातचीत में निकालता है, बल्कि अपने होने का सबूत देता है। तब यह संवाद बातचीत से अधिक आत्मालाप हो जाता है,–'क्या चाहती हो तुम या तुम्हारी मम्मी कि मैं ऊंचा न बोलूं ? अपने दिल की भड़ास न निकालूं ? लो, मैं धीरे बोलता हूं, लेकिन सच-सच बताओ, तुम दोनों ने क्या तय कर लिया है, उसे लगता है कि वह घर से बाहर निकल आया है या घर उसकी सीमाओं के बाहर पड़ रहा है–नुक्कड़, गली, पार्क कहीं पर भी जहां पर वह औरत की चर्चा के रूप में परिभाषित हो रहा है।

राजनीति का दखल तकरीबन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो गया है। युवा पीढ़ी भी उस टुच्ची राजनीति की होड़ से बाहर नहीं है। युवक के तमाम सवाल चारों नेताओं की शालीन बकवास में दबे ही रह जाते हैं, जिनके जवाब उनकी टोपियों के नीचे छिपे होने का भ्रम देते हैं, और एक बार फिर राजनैतिक स्थिति इस तरह उभरती है कि सवालों को हल करने के चक्कर में, नेता लोग लड़कों के हुजूम में प्लेटफार्म तैयार करने की ललक से अपने विस्तार की भूमिका बनाते रहते

हैं। एक लम्बी फौज उनकी पिछलग्गू होने को अभिशप्त हो जाती है, जिसे उसकी समस्याओं के कल्पित निदान का चारा डाल कर हांका जाता है। यहां पर युवक इस विडम्बना को महसूस करता है। उसकी आंखों के सामने एक दूसरी किस्म का पर्दा उठ रहा है, जिसमें राजनैतिक मुखौटों के पीछे उसे राजनीति की लड़खड़ाहट साफ नजर आ रही है, शायद यहीं कहीं पाँचवें सवार की पदचाप भी सुनाई दे जाय, पर स्थितियाँ अंत तक प्रतीक्षित हैं।

पीढ़ियों के अंतराल में सवाल यही नहीं है कि लड़के और लड़की को मां बाप पसंद नहीं थे या मां-बाप की दृष्टि में लड़का-लड़की बिगड़ गए थे? उन सबके सामने कुछ अपूर्णताए, कुछ विसंगतियाँ थीं, जिनके कारण ही शायद बाप-बेटे में तनाव है, प्रेमी-प्रेमिका मे एक ऐसी खींच-तान है, जो उन्हें दो ध्रुवों पर ले जाकर खड़ा करती है। इसका एहसास उन्हें आठ साल बाद अपने सारे अतीत को याद करने पर होता है। इसी संदर्भ में नाटककार ने युवक से जुड़ी हुई, तमाम विसंगतियों–पढ़ाई की निरर्थकता, पर-विवशता, नौकरी की बेकार तलाश, पढ़ाई का जेब के आकार से ज्यादा बड़ा होना, आदि को अभिव्यक्ति दी है। शेष तीनों लड़के उस वातावरण को स्थितिगत संज्ञा देने में सहायक होते हैं।

इसके अतिरिक्त नाटक को खोलने में सहायक हुई है नाटक की बुनावट, न के बराबर दृश्यबंध और बहुत कम रंग-सज्जा। प्रकाश के कोई अतिरिक्त चमत्कारी रंग-संकेत नाटककार ने नहीं दिए हैं। बूढ़े अपनी तन्मयता का माहौल 'क्रियेट' करते हैं। कालेजी लड़कों का सही चरित्र इसमें उभरा है। इसके अतिरिक्त लड़की और लड़के के घर के जो दृश्य हैं, वे भी बिना किसी नाटकीय लाग-लपेट के सम्प्रेषित हो जाते हैं। इस सम्पूर्ण संघटना को नाटककार की एक उपलब्धि कहना समीचीन प्रतीत होता है।

वास्तव में इस नाटक में महत्त्व भाषा का है। एक तो भाषा सामान्य हिन्दी नाटकों से अलग सीधे पात्रों की भाषा है। दूसरे, उसमें नाटककार ने भाषा की ऐसी जमीन तोड़ी है, जिसके माध्यम से पात्र मंच पर चरित्र को 'टोटेलिटी' में जीता है, अन्यथा एक ही पात्र का बूढ़े, नेता, लड़के और बाप या प्रोफेसर की भूमिका में प्रस्तुत होना असम्भव सा लगता है। इस तरह से एक पात्र के द्वारा विभिन्न भूमिकाओं का प्रयोग हमीदुल्ला ने अपने कुछ नाटकों में किया है, पर बलराज पंडित अपनी भाषा की पकड़ और नाटकीय समन्वय में अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक लगते हैं। निश्चित ही इसके साथ नाटक के खुलेपन का एक और आयाम जुड़ता है। कुल मिलाकर नाटककार के ही शब्दों में कहा जा सकता है–"इस नाटकके खेल मंच नहीं है और तो और परदे और मंच विरस परे हो जाते हैं।"

# बादल सरकार का तीसरा रंगमंच और जुलूस

—मदन मोहन माथुर

आधुनिक भारतीय नाटककारों में से बादल सरकार द्वारा 'प्रयोग रगमच' (प्रायोगिक या प्रयोगधर्मी नहीं, अपितु रंगमंच को' आम आदमी के बीच अभिव्यक्ति के सरल एवं सहज माध्यम के तौर पर प्रयोग में लाना) की ओर बढ़ने पर 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के लिये चमन आहूजा द्वारा प्रस्तुत साक्षात्कार में उनकी जिज्ञासाएँ स्वाभाविक थीं और बादल सरकार के उत्तर सटीक और विचारोत्तेजक। देखने में बादल सरकार का नाटक 'दरिद्र रंगमंच' ('पूअर थियेटर') लगता है। फिर बादल सरकार एक प्रतिष्ठित नाटककार हैं। निर्देशक के रूप में गली-चौराहों पर अपने नाटकों—'जूलूस,' 'दफा १४०' आदि के साथ उन्हें सक्रिय रूप से जुड़ा पाकर नाटक के बारे में उनके विचार जान लेने की जिज्ञासा होती है। बादल सरकार के अन्य प्रकाशित और मंचित नाटकों से जो 'इमेज' उभरती है, वह एकदम अलग है या उनके अपने दृष्टिकोण का एक दूसरे स्तर पर निर्वाह, यह प्रश्न भी रंगमंच के अध्येता के मन में उठता है।

बादल सरकार 'जुलूस' एवं 'दफा १४०' जैसे नाटकों के अनौपचारिक और कमखर्चीले (अनुमानित व्यय एकबार में केवल ७५ रुपये) प्रदर्शनों के सार्थक कलात्मक पक्ष को 'तीसरे रंगमंच' की अभिधा से विवेचित करते है। इस 'तीसरे रंगमंच' का 'तीसरी दुनिया' से कोई दूर का भी संबंध नहीं है। वे लोक रंगमंच और शहरी रंगमंच के बीच सामंजस्य करने की प्रायोगिक प्रक्रिया को ही 'तीसरा रंगमंच' मानते हैं। सिनेमा के यथार्थवादी सेल्यूलोइड संस्करण के विकल्प के रूप में वे एक रंगमच की स्थापना में प्रयत्नरत हैं। उनके दृष्टिकोण की मौलिकता पर सन्देह प्रकट करने से पहले ही वे अपनी १९६९ की पोलैण्ड, रूस, एवं चेकोस्लोवाकिया की रंगयात्रा के प्रभावों को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लेते हैं।

बादल सरकार ऐसे प्रदर्शनों के अभिनय को मनोशारीरिक मानते हैं। साथ ही वे ऐसे अभिनय का एक कमजोर स्तर... भी मानते हैं। यह अभिनय

इतना प्रभावोत्पादक और प्रबल होना चाहिये कि दर्शक सभ्यता के मुखौटे उतार कर नाट्यानुभव के भागीदार बनें। अभिनय के 'माइम' पक्ष से मुक्त होने के प्रयास मे अभिनेता एवं दर्शक दोनों असाधारण रूप से कल्पनाशील होते हैं। 'चरित्र या रूढ़-चरित्रों के बजाय पूरे नाट्यदल का उपयोग करना······दर्शकों को सीधे संवादों से सम्बोधित करना, शारीरिक अभिनय का प्रयोग ऐसे प्रदर्शनों की विशिष्टता होती हैं।' फलत: ये प्रदर्शन, कथा, चरित्र-चित्रण और यथार्थवादी संवादों से मुक्त होते हैं। प्रेक्षागृह में किये जाने वाले प्रदर्शनों में जहाँ अंधेरे में अभिनेता को ही प्रकाशित किया जाता है, बादल सरकार के अनौपचारिक प्रदर्शनों में दर्शक भी प्रस्तुति का अंग बनते हैं। बादल सरकार मानते हैं कि 'हमारे साथ संप्रेषण ही साध्य है और रंगमंच एक साधन।'

'जुलूस' रात दिन 'देश की व्यापक जनशक्ति का ह्रास' करते जुलूसों प्रदर्शनों पर करारा व्यंग्य है। गुरूदेव सत्ता और व्यवस्था के प्रतीक हैं, जो हर सम्भव प्रयास द्वारा सामाजिक जीवन के केन्द्र में बने रहना चाहते हैं। कोतवाल सत्ता का सच्चा सेवक और व्यवस्था के अनेकानेक औज़ारों में से एक है। मुन्ना आज की निराश पीढ़ी का नाट्य-व्यवहार में विशिष्ट प्रतीक है, वैसे अन्य पात्रों से बने जुलूस और उनके द्वारा अभिनीत विभिन्न स्थितियों से निराशा का स्वर मुखरित होता है और तब 'मुन्ने की हत्या' का प्रसंग मासूमियत की हत्या लगती है या उन सब की उपेक्षा, जो समाज में निर्दोष और कोमल हैं। नाटक की सारी कसावट एवं उसके प्राथमिक उद्देश्य की स्पष्टता के बावजूद 'जुलूस' में निर्देशक के लिये अपनी व्याख्या की स्वतन्त्रता है। नाटक का खुलापन प्रयोगों को आमंत्रित करता है और कई रंगकर्मी इसे 'निर्देशक का नाटक' मानते हैं। 'जुलूस' के विभिन्न प्रदर्शनों में नाटक के अन्त या आज की सामाजिक स्थिति के भविष्य के बारे में कल्पना को लेकर विभिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की गयी हैं। 'जुलूस' 'पार्टी' और 'दफा १४०' के अतिरिक्त अन्य नाटकों के साथ भी ऐसी निर्देशकीय स्वतंत्रता पहले भी ली गयी है। व्याख्याओं के विकल्प सीमित हैं—आशावादी, निराशावादी, यथास्थितिवादी या प्रतिबद्ध। पर ये विकल्प एक ही कृति को पूर्णतया नया मोड़ दे देने में सक्षम हैं। मुन्ना निराश है, जुलूसों में उसकी आस्था की हत्या हो चुकी है, जब कि वृद्ध किसी पथ-प्रदर्शक के प्रति आशान्वित है। अन्य पात्रों के माध्यम से व्याख्या के प्राय: सभी स्तरों और विकल्पों को छुआ गया है। निर्देशन में इनमें से किसी भी विकल्प

को रेखांकित करने की बात है और वही व्याख्या इस नाटक के सन्दर्भ में उस निर्देशक, बल्कि उस नाट्यदल से जुड़ सकेगी।

व्याख्या का सीधा सबंध कथ्य से है, पर 'जुलूस' अपनी संरचना के स्तर पर भी एक महत्त्वपूर्ण नाट्य-कृति हैं। संरचना के स्तर पर समाज के सर्वसाधारण अनुभव को रुपायित करने के लिये सामूहिक अभिनय की आवश्यकता समझी गयी है टूटते संवादों और 'विनियोजित नाट्य-संचालन' के कारण समस्या के आयाम व्यापक हो गये हैं। किसी परम्परावादी नाटक में जो बिन्दु नाट्य-त्रयीदोष के शिकार होते, वे ही इस नाटक के संबल है। मुन्ने का चरित्र और उसकी हत्या का प्रसंग नाटक की आन्तरिक संरचना को बाँधते हैं। नाटक की अपनी लय फिर भी बनी रहती है। पर्त-दर-पर्त कथ्य के सभी पहलू उजागार होते हैं और नाटक अपने-आप इकाइयों में बँटकर सुनियोजित लगने लगता है। नाट्य-व्यवहार क्रीड़ात्मक है। सारा नाटक एक खेल-सा लगता है। संवाद चौंकाने वाले, व्यंग्यात्मक एव विचारोत्तेजक होने से चुटीले और प्रभावोत्पादक हैं।

'जुलूस' का मंचन (या उसे आंगनमंच पर प्रदर्शन ही मानिये) कई स्थानों पर कई वार हुआ है। कुछ प्रदर्शनों के पीछे कथ्य को सम्प्रेपित करना उद्देश्य रहा लगता है, तो कुछ मैं नाट्य-व्यवहार की मौलिकता और रोचकता का लाभ उठाने का प्रयास। इस नाटक की पूरी कल्पना को बादल सरकार द्वारा स्वयं किये जा रहे प्रदर्शनों का अध्ययन कर और उनकी तीसरे रंगमंच की परिकल्पना से इसे जोड़ कर प्रदर्शन हेतु चुनना सार्थक होगा। कई बार शायद निर्देशक भी ठीक से न कहा पाये कि उन्होंने इस नाटक को क्यों चुना ? ऐसा प्राय: निर्देशकों के नाटक पढ़ते ही प्रभावित हो जाने एवं किसी अपरिभाषेय अनुभूति होने का उल्लेख किया जाता है। कुछ भी हो, किसी नाट्यकृति के सभी पहलू सभी उपलब्ध स्रोतों से समझ कर उसे सामूहिक अभिव्यक्ति हेतु चुनना भी एक प्रक्रिया हो सकती हैं।

'एकलव्य' जोधपुर द्वारा अर्जुनदेव चारण के निर्देशन में जोधपुर विश्वविद्यालय के कला संकाय के खुले 'लॉन' पर 'जुलूस' का प्रदर्शन हुआ। इस अनौपचारिक प्रदर्शन में कलाकारों का सामूहिक अभिनय एवं पारस्परिक तालमेल जहाँ नाटक की आत्मा को पकड़ने का प्रयास कर रहे थे, वहीं यथास्थिति पर नाटक अन्त और 'जुलूसों' के अभिनटन में पात्रों की छोटी संख्या नाट्यानुभव को बोझिल बना रहे थे। नाटक की विभिन्न इकाइयों में लयबन्दी सफल और कलात्मक थी, पर सम्पूर्ण नाटक की आन्तरिक लय उपलब्ध न हो पाने के कारण इकाइयाँ असम्बद्ध

और बिखरी-बिखरी लगती थीं। दूब सींचने के 'पाइप' से बने घेरे में यह प्रदर्शन मानो रंगमंच की सीमाओं को आंगन पर फिर से निमन्त्रण दे रहा था। प्रदर्शन में सादी वेश-भूषा का प्रयोग किया गया था तथा 'गुरू' के लिये भी 'मेकअप' की आवश्यकता नहीं समझी गयी थी। इस बात का यदि आंगनमंच की नयी कल्पना से पूरा तालमेल होता, तो मेकअप या वेशभूषा की बात पर किसी का ध्यान भी नहीं जाता। नाट्य-व्यवहार में आंचलिकता लाने का सुन्दर प्रयास किया गया और साथ ही लयकारी के साथ 'कम्पोज़िशन्स' पर नृत्य-रचना की तरह विशेष ध्यान दिया गया गया। प्रदर्शन कम्पोज़िशन दर कम्पोज़िशन आगे बढ़ता रहा, यद्यपि उनसे आन्तरिक लय उपलब्ध करना सम्भव नहीं था। दर्शकों में अधिकांश रंग कर्मियों की प्रबुद्ध कल्पनाशीलता का लाभ प्रदर्शन को मिला और सभी ने इसे सन्तोषजनक प्रस्तुति माना। श्रीमती सुलभा देशपाण्डे का कथन कि, 'जोधपुर में काफ़ी कुछ हो रहा है, पर काफ़ी कुछ होना बाकी है' जहाँ उभयनिष्ठ बयान है, वहीं अच्छे नाटकों के अच्छे प्रदर्शन का संदेश भी। अन्य प्रमुख रंगकर्मियों में डॉ० जगदीश शर्मा, सर्व श्री सरताज नारायण माथुर, मंगल सक्सेना, डी० एन० शैली एवं कैलाश भारद्वाज थे, जिन्होंने युवा निर्देशक अर्जुन देव को अच्छे प्रयास के लिये बधाई दी। प्रदर्शन में भाग ले रहे कलाकार थे— अर्जुन देव, सुकुमार वर्मा, हरिदास व्यास, नवीन बोहरा, कुलदीप माथुर, लक्ष्मणदास 'लल्लू' तथा रूपनाथ।

महेश होस्टल के निकट, चौपासनी रोड, जोधपुर-३४२००३

---

# प्रेमिका परिचय

मूललेखक—महाकवि पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला,

नाट्य रूपान्तर—कैलाश कल्पित

निराला के गद्य में व्यंग्य का पुट ही उनकी विशिष्ट शैली मानी जाती है। उन्होंने अपने निबन्धों तक ही नहीं कहानी और उपन्यासों में भी अवसर पाते ही व्यंग्य करने की प्रवृत्ति नहीं छोड़ी। 'बिल्लेसुर बकरिहा' हों या 'चतुरी चमार', प्रबन्ध-पद्म के निबन्ध हों या 'चाबुक', सभी में उन्होंने व्यक्ति की क्षीणता पर करारी चोट की है। 'प्रेमिका-परिचय' नामक कहानी में उन्होंने एक ऐसे युवक का व्यंग्यात्मक चरित्र प्रस्तुत किया है जो देश, धर्म और सामाजिक उत्तरदायित्व की परिधि से अलग रहकर मात्र अपने इश्क के चक्कर में मस्त रहता है।

प्रस्तुत नाटक निराला की 'प्रेमिका-परिचय' नामक कहानी का नाट्य-रूपान्तर है। इस नाटक के पात्रों में अनवर और श्यामा मूल कहानी में नहीं हैं। किन्तु जिस वातारण को निराला जी ने प्रस्तुत किया है उनको नाटक में साकार करने के लिए इन दो नये पात्रों का सहारा लिया गया है। 'कान्ति नामक पात्रा जो कहानी में बहुत बाद में नाम-रहित होकर आती है, उसे कुछ अधिक भूमिका नाटकीय गठन के लिये प्रदान की गयी है। [रूपान्तकार]

स्थान : विश्वविद्यालय के होस्टल का एक कमरा

प्रेमकुमार सिंहना—[कुछ झुंझालकर] हजरत शुक्ला जी को न तहजीब आई है और न आयेगी। लखनऊ में रहते यूँ ही दो साल गुजार दिये। आज

फिर न जाने कहाँ आइना रख दिया है। जब दाढ़ी बनाने चलो कोई न कोई मुसीबत। अमां शंकर [ जरा जोर से ] ओ पण्डित जी

शंकर शुक्ला —[दूर से चीख कर] कौन? सिनहा! नव्वाब साहब तुम बुला रहे हो क्या? [निकट आकर] क्या बात है।

प्रेमकुमार सिनहा—सुबह सुबह कहाँ चले गये। गोमती नहाने?

शंकर शुक्ला —कपड़े फीचने।

प्रेमकुमार —आप भी मेस्टन होस्टल में एक ही आदमी हैं। शहर में दिन पर दिन जो लाण्ड्रियाँ खुल रहीं हैं क्या मक्खियों के पर धोने के लिये। खैर आप क्यों मानेगें। जरा यह तो बताइये, आइना कहाँ रख दिया है।

शंकर —वह क्या किताबों के बीच रखा है।

प्रेमकुमार —वल्लाह कमाल कर दिया [पास ही खड़ी किताबों की अलमारी में खोजने की आहट] यह क्या? ब्लेड कहाँ गया? मैं कहता हूं ब्लेड।

शंकर —मैं नहीं जानता मुझसे ब्लेड से क्या मतलब।

प्रेमकुमार —मिला! मिला [दाढ़ी पर साबुन लगता हुआ] गुनगुनाता है दिल ......तो है......न संग-ओ-खिश्त दर्द से भर न आये क्यों?
रोयेंगे हम हजार बर......कोई हमें सताए क्यों?

शंकर —क्या हुआ प्रेमकुमार जी। कौन सता रहा है।

प्रेमकुमार —क्या बताएं। ग़लिब भी खूब लिख गए हैं दिल के कोई भी जज्बात उनकी शायरी सें अदा फरमा लीजिए।

शंकर शुक्ला —लेकिन दाग के बारे में अपकी क्या राय है

प्रेमकुमार —क्या कहने, दाग को तो मैं उस्ताद मानता हूं। कहते हैं कोई नामों निशा पूछे तो ऐ कासिद बता देना तखल्लुस 'दाग' है, वो आशिकों के दिल में रहते हैं।

शंकर शुक्ला —जरूर-जरूर वह तुम्हारे दिल में रहते हैं। शायरों के वे उस्ताद और अशिकों के तुम।

प्रेमकुमार सिनहा—है ही। ताना क्या मारते हो। कभी अपनी शक्ल देखी है ये पेंज-दार पूंछ सी मोटी चोटी लेकर पर्सनालटी थोड़े ही बनती है।

शंकर शुक्ला —तुम इस चोटी की कद्र क्या जानों। स्याह वार्निशशुदा चेहरे की खूटियां निकालने से कितने खूबसूरत बनोगे ?

प्रेमकुमार सिनहा—जाने भी दो, हाँ यह बताओ चोटी की क्या विशेषता है ?

शंकर शुक्ला —इलेक्ट्रिसिटी शरीर में प्रिजर्व करने का सबसे पहले यह आर्यों का निकाला हुआ तरीका है। और इसको ब्राह्मणों ने ही समझा है।

प्रेमकुमार सिनहा—[जोरो का ठहाका लगाकर] वाह, मान गया शंकर शुक्ला जी कमाल है कमाल है, आप भी अक्ल के नुमायशी आदमी मालूम देते है। [फिर जोरो की हँसी जो धीरे-धीरे हल्की पड़ जाती है]

शंकर शुक्ला —तुमसे कौन भिड़े [घड़ी की ओर ताक कर] अरे यार बहुत देर हो गयी। कुछ पढ़ लेना चाहिये [प्रस्थान] करता है।

प्रेमकुमार —[प्रेमकुमार उसके जाते ही कुछ देर बुदबुदाता हुआ किताब पढ़ता है। फिर किताब से ही फोटो निकालकर देखता है] वाह क्या आँखे है। [सीने से लगाकर अपने कोट मे छुपा लेता है] फिर बाहर चला जाता है)

प्रेमकुमार सिनहा—गुनगुनाता है। मुहब्बत में मजा है छेड़ का, लेकिन मजे की हो हजारों तुत्फ हर इक शिकव-ए-बातिल में रहते हैं।

शंकर शुक्ला —(प्रवेश करता हुआ) क्या बता है जनाब प्रेमकुमार जी सिनहा इस समय तो कोई नई खबर मालूम होती है।

प्रेमकुमार सिनहा—क्यों नहीं। आज मिस 'सी' ने सिकंदर बाग में बुलाया था। क्या करूँ किसी का न्योता टाल तो सकता नहीं, जाना पड़ा, भाई जान देती है। पूछने लगीं, क्यों, तुम हमेशा के लिए हमारे हो ? कहना पड़ा हाँ। अब ऐसा प्यार ठुकराया तो जाता नहीं। फिर क्या कहूं कि क्या-क्या बातें हुई। वहाँ से हम लोग कार्लटन होस्टल गए, खाया-पिया मौज से बारह बजे तक रहे।

शंकर शुक्ला —हरी ओम्, हरी ओम्।

प्रेमकुमार सिनहा—पर्सनाल्टी की बात है। शंकर जी। कल की ही बात तो आपको बताई ही नहीं।

शंकर शुक्ला —कौन सी ?

प्रेमकुमार सिनहा—कल मिस लीलावती का पत्र मिला था। लखनऊ, में उससे खूब सूरत कोई नहीं, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूं। क्या गजब

की आँखे हैं। देखती क्या है, पार कर जाती है। रात आठ वजे विक्टोरिया-पार्क में मिलने के लिये बुलाया था।

शंकर शुक्ला —(लम्बी साँस भर कर) हा S S S S।

प्रेमकुमार सिनहा—देखो यह सब चेहरे की करामात है। दुनिया में कामयाबी हासिल करना चाहते हो तो पहले चेहरा-सुधारो। मैं कहता हूं, तुम कैसी मनहूस, मुहर्रमी सूरत बानए फिरते हो तुम्हारी बीबी भी तुम्हें नहीं प्यार कर सकती। यह चेहरा ही प्यार करने वाला नहीं। हाँ, फिर लीलावती से बड़ी दूर तक मंजिल तय हुई।

शंकर शुक्ला —ऐसे किस्से सुनाते हो कि सन्यासी का दिल भी मचल जाये।

प्रेमकुमार सिनहा—किस्से नहीं वाकया। जिन्दगी का मजा लेना हो तो आजमाकर देखो।

शंकर शुक्ला —मैं भी आजमाऊँगा एक दफे। देखें क्या होता है। लेकिन मेरा कलेजा तो अभी से धक-धक करने लगा। उफ कैसे बात शुरू करूँगा।

प्रेमकुमार सिनहा—उसमें क्या है। किसी की तारीफ करने के लिये चाहे जहाँ से तारीफ शुरू कर दी जाय।

शंकर शुक्ला —सही बात है [स्वगत] मैं भी प्रयत्न कर के देखूँ तो सही [शंकर शुक्ला प्रस्थान करता है और प्रेमकुमार व्यंग्यात्मक सीटी बजाता है]

[ अन्तराल ]

[कैनिंग कालेज की कैंटीन की चहल-पहल। मक्खन टोस्ट और लखनऊ की मलाई की गिलौरियों की तारीफ भरे शब्दों की भनक। लड़के और लड़कियों दोनों की ही आवाज]

श्यामा —[बैरे से] तुम्हारे यहाँ सड़ी हुई मिठाई रख छोड़ी गयी है। कैनिंग कालिज की कैन्टीन का ठेका न छुड़वा दिया तो कहना।

कान्ति —अरे चलो श्यामा। किस चक्कर में पड़ गयीं। मिठाई खराब है तो एक पैसा न दो बस।

श्यामा —ठीक कहती हो। इन लोगों को जब तक सजा नहीं मिलेगी सामान सुधर ही नहीं सकता [थोड़ रूक कर] कान्ति वह देखो आज पंडित शंकर शुक्ला जी केण्टीन में तशरीफ ला रहे हैं।

कान्ति —वाह ! चलों जरा प्रणाम कर आएं।

श्यामा —तू बड़ी शोख है। कैंण्टीन में आना, क्या मना है उनके लिए।

कान्ति —दो साल होने को आए आज तक मैंने इन्हें कभी कैण्टीन में नहीं देखा। आज कोई खास बात जरूर है।

श्यामा —बात तो ठीक है, मैंने भी कभी नहीं देखा।

कान्ति —तो फिर चलो उधर जरा मजा ही आयेगा। [कुछ देर रूक कर] श्यामा क्या सोच रही हो।

श्यामा —[चौंक कर] कुछ नहीं कान्ति, चलो क्या मैं डरती हूं। पंडित जी से।

[दोनों का ही शंकर शुक्ला के पास पहुंच कर कुर्सियाँ खींच कर बैठना। कैण्टीन की चहल-पहल का स्वर]

कान्ति —[आवाज को खींच कर] नमस्कार शंकर जी।

शंकर शुक्ला —[विस्मय से] नमस्कार कान्ति जी ! बैठिये।

श्यामा —मेरा भी नमस्कार।

शंकर शुक्ला —ओ हो श्यामा जी। नमस्कार। बैठिये। क्या मंगाऊँ, आपके लिये।

श्यामा व कान्ति —[दोनों ही] कुछ नहीं !

शंकर शुक्ला —ऐसी भी क्या बात है। कुछ तो आना ही चाहिये।

[जोर से बुला कर] राम आधार, देखो तीन काफी दे जाओ।

कान्ति —आप बेकार तकल्लुफ कर रहे है मैंने तो कभी भी आपको कैण्टीन में नहीं देखा। आज पहली बार देखकर कुतूहलवश कुछ नजदीक आकर बैठ गयी।

शंकर शुक्ला —क्यों नहीं, क्यों नहीं। भई जमाना बदलता है। मैंने सोचा कुछ मैं भी बदल कर देखू।

[काफी के प्यालों का आना]

शंकर शुक्ला —लीजिए आ गयी काफी पीजिये।

श्यामा —यह तो आपकी ज्यादती है।

शंकर शुक्ला —अजी साहब, मैं हूं ही किस लायक जो ज्यादती करूँगा।

[काफी की चुस्कियाँ]

कान्ति —आज काफी अच्छी बनी है।

शंकर शुक्ला —[खटाई खाया हुआ मुँह बना कर किन्तु फिर थोड़ा खखार कर]

हाँ साहब, चीज बढ़िया मालूम होती है वह तो इसका रंग ही बता रहा है कि फाइन प्रीपेरेशन हुआ।

श्यामा —[ कान्ति के कान में फुसफुसा कर ] जरा शंकर की शक्ल तो देखो। हलक के नीचे काफी उतर नहीं रही है।

कान्ति —चुप।

शंकर शुक्ला —क्या बता है ?

कान्ति —कुछ नहीं, काफी के रंग की तारीफ कर रही थी।

शंकर शुक्ला —वही तो, रंग ही की तो बात है। हर चीज का रंग ही तो उसकी खासियत होती है। अब आप...... ।

कान्ति —हाँ हाँ कहिये ना रुक क्यों गये।

शंकर शुक्ला —मैंने कहा श्यामा की आँखों का रंग देखिये, हिरनी शरमा कर भाग जाय।

कान्ति —[ कुछ कुढ़ कर ] नजर-नजर की बात है।

शंकर शुक्ला —नजर-नजर की बात क्या है अब आपकी कमर की जो लोच है वह कहीं और मिल सकती है।

कान्ति —शंकर जी भंग तो नहीं चढ़ गयी। होश में हैं आप।

शंकर —चिढ़ गयीं आप। यानी कि तारीफ करना भी गुनाह है। आपके गालों पर जो सुर्खी इस वक्त छलक आई है वह...... ।

श्यामा —जी हाँ गुलाब शर्मा जाय। चुप रहिए बस। अपनी शक्ल देखी है।

कान्ति —चलो। इस फुदकती हुई चोटी में ये गुण भरे हैं, क्या मालूम था।

शंकर शुक्ला —मेरी चोटी का अपमान।

श्यामा —मनहूस। कल ही रस्टिकेट न करवाया तो।

शंकर शुक्ला —रस्टिकेट [ घबड़ाकर ] उफ क्या होगा मेरी तो मिट्टी का? क्षमा-क्षमा!

कान्ति —अच्छा जाइये क्षमा कर दिया किन्तु फिर [ पलटकर ] आओ चलें श्यामा।

[ दोनों का जाना ]

शंकर शुक्ला —[ स्वागत ] हाय राम, जान फँस गयी थी। बहुत बचा। अब कभी नहीं!

[ अन्तराल ]

प्रेमकुमार सिनहा—[ प्रवेश करता हुआ। स्थान-वही होस्टल का कमरा शंकर

शुक्ला को उपस्थिति का आभास लेता हुआ] यह शौक, यह अरमान, यह हसरत, यह तमन्ना, क्या हो मिरे काबू में तुम आ जाओ अगर आज।

शंकर शुक्ला —बड़े मजे से झूमते आ रहे हो। क्या खबर है।

प्रेमकुमार सिनहा—[जेब से एक पत्र निकाल कर] लो पढ़ो, देखो क्या लिखा है इस पत्र में

शंकर शुक्ला —[पढ़ते हुए कुछ विस्मय प्रगट करते हुये] मेरे प्रिय प्रेमकुमार! आज कितने दिनों से कालेज जाती हूं, तो एकबार तुम्हें अवश्य देखती हूं। नहीं देखती, तो दिल की आग नहीं बुझती। पर तुम, तुम कितने कठोर हो। मेरी तरफ भूलकर भी नहीं देखते। ईश्वर ने तुम्हें यह रूप मुझे जलाने के लिए दिया था। जो चीज अपनी नहीं मैं उसे चाहती हूं। तुम हँसोगे। न हंसो, यह मेरे भाग्य होंगे पर क्या मैं आशा करूँ कि मुझे जलाने वाली आग तुम मुझे दोगे? जरूर दो, जरूर दो प्यारे।

प्रेमकुमार सिनहा—कुछ समझ में आया?

शंकर शुक्ला —[थोड़ा रुक कर, फिर पत्र पढ़ने लगता है] मैं कुछ भी तुमसे इस नश्वर संसार में नहीं चाहती, सिर्फ वही आग, वही जलती हुई मुझे जलाले वाली अपने रूप की आग एक बार मुझे दे दो, और देखो, मैं तुम्हारे समाने ही किस तरह जलकर राख हो जाती हूं प्यारे [कुछ रुककर] प्यारे अब यह हाथ जबाब दे रहा है आँसुओं का तार बँध रहा है, क्या लिखूं? या एकबार, बस एकबार तुम मेरे प्यासे दृगों को तृप्त करने के लिए कल शाम बनारसी बाग में मुझे मिलोगे? तुम्हारा हमेशा-हमेशा के लिये दिल से आभार मानूंगी—उफ

५, हिवेट रोड, तुम्हें न मिल सकने वाली
लखनऊ तुम्हारी शान्ति

प्रेमकुमार सिनहा—देखा तुमने?

शंकर शुक्ला —भाई है तो यह किसी सच्चे दिल की पुकार।

प्रेमकुमार सिनहा—है न? तुससे मैं कई बार कह चुका हूं, कि और कुछ नहीं तो ज़रा अपना चेहरा भले आदमी की तरह सुधार लो पर तुम। पूरे गँवार

ही रहे।

शंकर शुक्ला —लेकिन इसने तुमको कहाँ देखा होगा ? मुझे तो कभी-कभी बड़ा ताज्जुब-सा लगता है।

प्रेमकुमार सिनहा—कहाँ देखा होगा। मैं जहाँ-जहाँ जाता हूं, वहीं-वहीं से कहीं देखा होगा। फिर कुछ दूर चलकर, खुद ताँगे से उतर कर ताँगे वाले से पता पूँछ आने के लिये कह दिया होगा।

शंकर शुक्ला —[विस्मय से]ऐसा अच्छा भी होता ?' है

प्रेमकुमार सिनहा—अरे मूर्ख ! लखनऊ है। फिर जब दिल की लगती है, तब दिल के खुदा रास्ते भी वंदे को वता देतें हैं। मुमकिन है दूसरी तरह पता लगाया हो। किसी गर्ल्स-कालेज की लड़की जान पड़ती है। वैसे कालेज की लड़कियों से मेरी जान पहचान काफी है। उनमें से ही कोई होगी।

शंकर शुक्ला —[विस्मय से] लेकिन हर एक तुम्ही से स्वयंवरा होती है।

प्रेमकुमार सिनहा—मुझसे नहीं देखो, इधर देखो इस रूप से होती है, यह शाही शान लखनऊ में दूसरी जगह न पाओगे [चेहरे पर हाथ फेरता है]

शंकर शुक्ला —(जोर से हँसता है) होऽ होऽ होऽ।

प्रेमकुमार सिनहा—तुम हँसते क्यों हो ? [क्रोध का प्रकटीकरण]

शंकर शुक्ला —इसलिये कि तुम जो कुछ कह रहे हो, इसमें तिल रखने की भी जगह नही (कुछ रूककर) तो क्या वहाँ जाओगे ही ?

प्रेमकुमार सिनहा—(हँस कर) फेस इज दी इनडेक्स आफ माइन्ड, चेहरा मन का दर्पण है। तुम्हें कहीं से न्योता मिल भी नहीं सकता। तुम जरा यह ब्राह्मणों की पोंगापंथी छोड़ो, तो कुछ दिनों में तुम्हें आदमियों से मिलने लायक वना दूँ। कुछ रूक कर) तुम मेरा मुँह क्या देख रहे हो ? लाओ चिट्ठी चलें। अभी और भी कहीं जाना है। (प्रस्थान करता हुआ)

शंकर शुक्ला —हे भगवान। आदमियों से मिलने लायक कैसे वना जाता है ?

[ अन्तराल ]

वनारसी बाग के जानवरों की क्रमगत आवाज। चिड़ियों की

बोली, एक ओर कुछ लड़कियों की खुसुरपुसुर इसी समय सीटी बजाते हुए प्रेमकुमार का प्रवेश ।

प्रेमकुमार सिनहा—(स्वगत) न जाने कौन लड़की है। क्या बताया जाय, चलूं उधर तो देखूं।

एक युवती —क्या घूर कर देख रहे हैं आप?

प्रेमकुमार सिनहा—कुछ नहीं, कुछ नहीं (सीटी बजाता दूर निकल जाता है। फिर लौट आता है अरे यहाँ तो बहुत सी महिलाएं बैठी हैं। जरा इनमें देखा जाय!

एक अधेड़ महिला—( कर्कश स्वर में) यहाँ क्या फेरे लग रहे हैं।

प्रेमकुमार —(धीरे से) अरे, बाप रे! [घबड़ा कर हटते समय एक अन्य महिला से टक्कर ]

महिला —कैसा अहमक है, अंधा कहीं का !

प्रेमकुमार —क्षमा कीजियेगा। (स्वगत) जाने कौन है। शान्ति? चलो हॉस्टल ही लौट चला जाय। आज खैरियत नहीं (कुछ देर टहल कर वहाँ से सीटी बजाता चला जाता है सीटी की आवाज धीमी होती जाती है)

[ अन्तराल ]

शंकर —[स्थान हॉस्टल का कमरा] क्यों भाई प्रेम आज बहुत मुर्झाये बैठे हो ? पहली पहचान वाली शाम अच्छी तो कटी ?

प्रेमकुमार —हिन्दोस्तानी सबसे पहले इसीलिए बदनाम है कि वादे के हजार पीछे दो भी पक्के नहीं निकलते। तभी तो गले से गुलामी छूटती नहीं। ऐसी गंदी आदत वाले अगर चाहें कि अपना सुधार सामजिक या राजनीतिक कर लें, तो क्या खाक करेगें ?

शंकर —तो कहो, क्या वादा खिलाफी रही। मैं तो पहले से तुम्हें सचेत कर रहा था कि कहीं किसी ने मजाक न किया हो पर तुम ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे सबको युधिष्ठिर का अवतार समझ लेते हो।

प्रेमकुमार —मेरी आदत है, मैं अपनी तरह दूसरे को भी तहजीब-पसंद भला आदनी मान लेता हूं। और लखनऊ में, खासकर पढ़ी लिखी लड़कियों में ऐसी वेहूदा भी रह सकती है, मैं कयास में नहीं ला सकता था।

शंकर —तब तो बड़ा धोखा हुआ। सारा मजा ही किरकिरा कर दिया!

प्रेमकुमार –लो वह देखो डाकिया आ गया। (लिफाफा गिरने की आवाज) लिफाफा आया है जरा इस पत्र को पढ़ो। (स्वयं बढ़कर लिफाफा फाड़ता है थोड़ा सा स्वतः पढ़ कर) देखो, हम लोग ग़लती में थे। कितनी साफ दिल की तस्वीर है यह लो पढ़ो (चिट्ठी शकर के हाथ में देता है)।

शंकर –(चिट्ठी लेकर) अच्छा तो सुनो चिट्ठी। प्राणेश प्रेम ! तुम मेरे लिये कल कितने परेशान थे। जब तुम जानवरों के घेरे घूमते हुए अपनी शान्ति की खोज में व्याकुल हो रहे थे, तब मैं अपनी माँ के साथ बैण्ड-स्टैण्ड के सामने वाले मैदान में खड़ी उधर से तुम्हें जाते हुए देखकर हँस रही थी। जी चाहता था, दौड़कर तुम्हारी शान्ति का पता दे दूँ। और पहले पता बताने का पुरस्कार तुमसे कुबूल करवा लूँ। तब मेरी माँ साथ थीं, इसलिये तुम से मिल नहीं सकती थी।

प्रेमकुमार –ठीक ही तो है। बेचारी कैसे मिलती हूं ! आगे तो पढ़ो।

शंकर –(आगे पढ़ते हुये) पर क्या इतना सोच सकोगे कि मैं कितनी बार, कितनी तरह आंखों से, दिल से, गले से और प्यार से तुमसे मिल चुकी हूं। मैं वही हूं, जिसे देखकर तुम चौंके थे, मेरी मौन पुकार सुनकर मुझे देखकर खड़े हो गए थे। फिर उदास होकर चले गये थे।

प्रेमकुमार –लो मुझे क्या पता था कि तुम वही थीं।

शंकर –(आगे पत्र पढ़ते हुये) लो, और आगे सुनो। तुम समझो कि अपनी चाहने वाली के दिल में कितनी आग तुम फूंक गए हो। वह अपने प्यारे के असली प्रेम की परीक्षा कर, न मिल सकने के कारण कितना तड़प रही है। आह ! तुम्हें इतना कष्ट अपनी शान्ति के लिये स्वीकार करना पड़ा ! पर शान्ति तुम्हें मिलेगी।

प्रेमकुमार –(बीच में ही) हाँ, हाँ मिलेगी क्यों नहीं।

शंकर –(पत्र आगे पढ़ता है) वह तुम्हारे ही पास रहती है तुमसे जुदा हो जाय तो उसकी हस्ती मिट जाय। तुम्हें अवश्य-अवश्य तुम्हारी शान्ति मिलेगी। कल एलफिस्टन-सिनेमा जरूर-जरूर आने की कृपा करना। तुम्हारी शान्ति [कुछ रुक कर] यार इसके पत्र में तो पूरी कविता है।

प्रेमकुमार —हाँ, काफी पढ़ी-लिखी जान पड़ती हैं। अंग्रेजी बड़े काट की लिखती है [कुछ रुक कर पैंतरा बदलते हुये] जब माँ साथ हो तब कैसे कोई लड़की खुले दिल से मिले और और बात-चीत करे ?

शंकर —[बढ़ावा देकर] किसी ऊँचे खानदान की जान पड़ती है।

प्रेमकुमार —जरूर, यह काट-छांट किसी फटीचर घर की लड़की की हो ही नहीं सकती। खानदानी घर की लड़की की मिसल बेचारी दूब से दी जाती है। जो दूब बारह मास धूप में झुलसती रहने पर भी दिल से गीली रहती है। किसी ने जरा-सा पानी डाला या आसमान से चार बूंदें पड़तीं कि चौगुनी हरियाली से लहरा-लहरा कर पानी डालने वाले की तारीफ करने लगती है।

शंकर —बहुत दुरुस्त कहते हो। तो क्या अब एलिफिंस्टन सिनेमा जाने का विचार है।

प्रेमकुमार— न जाने की क्या बात हुई? अगर न्योता और वह भी भले घर का किसी को मिले, और फिर भी वह न जाय तो उससे बड़ी मेरे खयाल से दुनिया में दूसरी बेहूदगी है ही नहीं।

शंकर —जरूर जाना चाहिये। तबियत मेरी भी होती है कि जब तुम मिल लो, तब एक बार उनके दर्शन मैं भी करूं। मेरा ख्याल है कि वे अंग्रेजी में कविता जरूर लिखती होंगी।

प्रेमकुमार —हाँ, दिल तो एक सच्चे शायर का है। हर संटेन्स चोट करता है। है ना ?

शंकर —करारी चोट ! देखो ना चोट तुम पर है, तड़प मुझे हो चली है।

प्रेमकुमार —इतना गठा लिखा है कि साहब कोई लफ्ज निकाल दो, तो सारा मज़-मून लँगड़ा हो जाय। हाँ जरा मैं दाढ़ी बना लूं तो फिर एक बार मिल लूं, मैं वादा करता हूं, तुम्हें भी मिला दूंगा।

शंकर —सच !

प्रेमकुमार —और क्या। धीरे-धीरे भले आदमी बन जाओ। अब जमाना पुराने खयालात से बहुत आगे बढ़ आया है। तुम बाकायदा पढ़े-लिखे आदमी हो, कुछ अपनी तरफ से समझो। और, मैं तो पहले लड़कियों से मिलने-जुलने की आजादी मानता हूं, फिर और कुछ।

[ अन्तराल ]



[सिनेमा के सामने की भीड़ की चहल-पहल, पार्श्व से एक आवाज सुनाई

देती है। एक टिकट चार आना, । एक टिकट आठ आना। हट वे खिड़की से। नहीं हटूंगा। एक ठोंसा दूंगा। मैं न दूंगा। तेरे बाप की खिड़की है। क्यों लड़ रहे हो। चलो आगे बढ़ो। कौन खेल लगा है। शैलवाला । कैसा खेल है। अच्छा ही होगा-मिस सुलोचना काम कर रही हैं और हाँ कज्जन बाई भी तो हैं। सुना है माधुरी और मुश्तरी बाई भी काम कर रही है—इसी भीड़ के बीच प्रेमकुमार की आवाज सबसे अलग सुनाई देती है]

अनवर　—[प्रवेश करता हुआ] अरे भाई प्रेमकुमार बहुत दिन बाद मिले। आजकल चौक की तरफ नहीं आते।

प्रेमकुमार　—[अनमने रूप से] अरे अनवर तुम। क्या बताऊँ अनवर साहब चौक की तरफ नहीं ऽ ऽ ऽ आ पाता।

अनवर　—बड़े खोये-खोये से दिखाई दे रहे हो आखिर किसे ढूंढ़ रहे हो ?

प्रेमकुमार　—क्या बताऊँ यार, एक लड़की है अपने रिश्ते की आज उसे सिनेमा दिखाने का निमन्त्रण दे आया था। उसी को तलाश रहा हूं।

अनवर　—लेकिन तुम तो सभी को ऐसा घूर-घूर कर देख रहे हो कि............

प्रेमकुमार　—[फुसफुसा कर] कि.........कहीं बदनाम न कर देना यार तुम तो मेरी सारी शराफत ही धोने लगे हो।

[सिनेमा शुरू होने की घंटी]

अनवर　—लो घण्टी बज गयी। अब कब तक इन्तजार करोगे ?

प्रेमकुमार　—मेरी तो अक्ल काम नहीं कर रही है, चलो अन्दर चल कर ही उसे ढूंढ़ लेंगे।

[एक बहुत पुरानी फिल्म का गाना]

प्रेमकुमार　—यार यह तो बुरा हुआ। पिक्चर भी शुरू हो गयी अब वहाँ अंधेरे में शक्ल पहचानना मुश्किल है।

अनवर　—मियाँ देखो तमाशा, अब शक्ल-सूरत पहिचान चुके।

प्रेमकुमार　—मजबूरी है। चलो बैठा जाता हूं। [फिर ठिठक कर रुकता है, दूर हटता हुआ] मैं अभी आता हूं।

अनवर　—क्या बात है। अमां कहाँ चल दिये ?

प्रेमकुमार　—हाँ, दिल नहीं लग रहा है। मैं चला तुम देखो खेल।

अनवर　—अमां सुनो तो।



प्रेमकुमार　—क्या सुनूं। [दूसरी ओर से कुछ लड़कियों के आने की आवाज,

वह स्वगत बड़बड़ाता है ] बीसियों औरतें खड़ी हैं इन्हीं में कोई शांति होगी । गोल, लम्बे और चकले सभी तो सुन्दर और निर्दोष चेहरे हैं । इनमें हमारी शांति कौन हो सकती है । शांति कहाँ है, शांति कहाँ है, [आवाज क्रमशः धीमी होती जाती है, अचानक] ओ ताँगे वाले !

नेपथ्य स्वर—हाँ, हुजूर ।

प्रेमकुमार —[प्रस्थान करता है मात्र उसका स्वर सुनाई देता है] चलो बादशाह-बाग चलो ।

[ अन्तराल ]

प्रेमकुमार —अगर किस्मत से लैला के गले का हार हो जाता, जमाने भर की नजरों में खटकता, खार हो जाता ।

शंकर —आज तो चहक रहे हो । क्यों कल मुलाकात हो गई ?

प्रेमकुमार —[मायूसी के साथ] किसी ने ठीक कहा है, जो मजा इन्तजार में पाया, वह वस्ल में न पाया ।

शंकर —तो क्या अभी इन्तजार ही चल रहा है ?

प्रेमकुमार —बात यह हुई कि कल मैं पहले शो में गया, वे दूसरे में आईं । इसलिये मुलाक़ात न हो सकी । बड़ा ताना देकर चिट्ठी लिखी है सो पढ़ो ।

शंकर [चिट्ठी खोलकर पढ़ते हुये] प्यारे प्रेम, कल दूसरे शो में मैं गई, पर तुम नहीं थे । यह कैसी बात ! क्या तुम मुझसे नाराज हो गए ? मुझे क्षमा करना ! तुम्हीं सोचो मेरा क्या कसूर था ? अगर तुम पहले शो में आए, तो गलती की । भला पहले शो मे भी कहीं दिल मिलाने वाले मिल सकते हैं ।

प्रेमकुमार —[बीच में ही] ठीक कहती हैं ना ?

शंकर —हाँ आगे तो पढ़ूँ—जब तक सिनेमा होता, हम लोग गोमती के किनारे बात-चीत करते ; फिर सिनेमा खत्म होने पर मैं घर चली जाती । पहले शो में यह मौका शहर की भीड़ में कहाँ मिलता है ? अगर पहले शो में तुम गये तो जरूर चुड़ैलों को देखकर मेरा अंदाजा लगाया होगा, इस तरह तुमने मेरा [illegible] अपमान किया ।



प्रेमकुमार —सचमुच गलती हो गयी ।

शंकर —[आगे पढ़ते हुए] अब कल का वादा पूरा होना ही चाहिये। कल गोमती के किनारे, छोटेलाल के पुल पर छतरी में रहना। मैं नहाने जाऊंगी। तब तुम मुझे दिन में देखकर फिर रात को न भूल सकोगे। फिर हम लोग किसी दिन कहीं मिल जायेंगे। कल जरूर-जरूर तुम्हें तुम्हारी शांति मिलेगी। ठीक आठ बजे दिन में मैं जनाने घाट पर हूंगी। तुम्हारी कब से खोई हुई, शांति।

प्रेमकुमार —मानते हो न उस्ताद।

शंकर —अब क्या, अब तो कल जरूर किस्मत खुल जायेगी।

प्रेमकुमार —क्या बताऊँ, एक न एक ऐसा अड़ंगा लग जाता है कि बना-बनाया काम बिगड़ जाता है।

शंकर —पहले की अड़चन अच्छी होती है। पीछे की सफलता तभी स्वाद-दार जान पड़ती है। प्रेम के लिये तो यह खास बात होगी। मुझे कल्पना से इसका ठोस आनंद कुछ-कुछ मिल रहा है।

प्रेमकुमार —[हँस कर] कल्पना नहीं। खरबूजे-सा अपना भी हाल समझो रोज साथ किसका होता है? यह उसी का रंग चढ़ रहा है, जो तजवीज़ इतनी चोखी उतर रही है।

शंकर —[जोर से हँस कर] यार पके खरबूजों को स्यारों से बड़ा डर है।

[ दोनों ही हंसते हैं ]

[ अन्तराल ]

[बहते पानी का कल-कल स्वर। स्नानार्थियों के मन्त्र आदि का उच्चारण। आरती पूजा आदि की ध्वनि]

प्रेमकुमार —क्या मुश्किल है। आज भी मुलाकात नहीं होगी क्या। पाँच से नौ बज गये इस छतरी के ऊपर ही टहलते।

एक पण्डा —आप बड़ी देर से यहाँ टहल रहे हैं और मैं देख रहा हूं जो भी औरत जाती है आप बुरी तरह से घूरते है क्या आपको इस तरह नजर लड़ाते वक्त अपनी मां-बहनों की बिल्कुल याद नहीं आती?

प्रेमकुमार —क्या बताऊँ पण्डा जी [हकलाकर] आपको भ्रम हो गया है। मैं अभी चला जा रहा हूं।

[ अन्तराल ]

प्रेमकुमार —वाह वाह आखिर चिट्ठी फिर भेजी ही गयी। देखूं तो अब क्या लिखा है। [चिट्ठी खोल कर पढ़ता है] भूलीबिराम, तुम्हें गोमती

में भी चुल्लू भर पानी नहीं मिला। तुम्हारी शांति, ५-हीवेट रोड, लखनऊ।.........धत् तेरे की।

शंकर —क्या हुआ यार,—देखूँ मैं भी तो जरा पत्र। मूर्खाधिराज तुम्हें गोमती में भी चुल्लू भर पानी न मिला.........यार यह तो अच्छा मजाक रहा। अब ५-हीवेट रोड पर चलो, देखें कौन रहती है।

प्रेमकुमार —चलो।

[ अन्तराल ]

प्रेमकुमार —पहले तुम अन्दर जाओ शंकर !

शंकर —नहीं, पहले तुम।

प्रेमकुमार —मेरा जाना ठीक नहीं। अच्छा हो तुम किवाड़ खड़का लो।

[ किवाड़ खड़काने की आवाज ]

कान्ति —कौन है। [किवाड़ खोल कर] अरे! शंकर तुम !

शंकर —अरे, कान्ति तुम यहाँ !

प्रेमकुमार —अरे, कान्ति तुम यहाँ रहती हो।

कान्ति —हाँ जीजाजी, मैं यहीं रह रही हूं।

शंकर —जीजाजी !

कान्ति —हाँ, प्रेमकुमार जी मेरे जीजाजी हैं।

प्रेमकुमार —और यह शान्ति जी कौन हैं ?

कान्ति —आप शान्ति को नहीं जानते, शान्ति तो दीदी का ही राशि का नाम है।

प्रेमकुमार —तो उनकी तरफ से तुम पत्र लिख-लिख कर मुझे बेवकूफ बना रही थीं ?

कान्ति —हाँ जीजाजी। आपको सबक देने के लिये।

प्रेमकुमार —ओऽम्, शान्ति! शान्ति !!

—३४१, बहादुरगंज, इलाहाबाद

---

# नक्षत्र की प्रस्तुति शबेतार

—ज्ञानचन्द जैन

विगत बीस फरवरी को लखनऊ में नक्षत्र अंतर्राष्ट्रीय द्वारा रवींद्रालय मंच पर कुमुद नागर द्वारा निर्देशित नाटक 'शबेतार' एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही। यह नाटक प्रेमचन्द जन्मशताब्दी वर्ष में 'नक्षत्र' की ओर से श्रद्धान्जलि के रूप में प्रस्तुत किया गया। मुंशी प्रेमचन्द का यही एक महत्वपूर्ण नाट्यालेख उपलब्ध है, जिसका अनुवाद उन्होंने प्रसिद्ध बेल्जियन नाटककार मारिस मेटरलिंक (१८६२-१९४९) के एक बहुचर्चित नाटक के आधार पर अंग्रेजी से उर्दू में किया।

उर्दू शब्द 'शबेतार' का अर्थ होता है अंधेरी रात। यह एक प्रतीकात्मक नाटक है। जिसमें एक दर्जन अंधे स्त्री-पुरुष जंगल में भटकते दिखाये गये हैं। वे सभी रोशनी की तलाश में निकले है और अपने रहनुमा से बिछुड़ गये हैं। वे सभी दुनिया की धड़कनों के बीच रहते भी उसे देख नहीं पाते। वे अपने भीतर के अकेलेपन और अंधेरे से डरे हुए हैं। अत में जब मौत को यकीनी मानकर खौफ, मायूसी का एक आलम उन पर हावी हो जाता है तब उनके जत्थे की एक पगली अंधी स्त्री की गोद का बालक, जो उनके बीच एकमात्र आंखवाला बालक है, पूरब में नये सूरज का उजाला फैलते देखकर जोर से रोने लगता है और उसकी आवाज उनकी जिंदगी में नया उजाला भर देती है।

निर्देशक कुमुद नागर ने नाटकीय मोड़ों से रहित इस प्रतीकात्मक कहानी को अपनी उर्वर कल्पनाशीलता से इतने सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया कि लगभग सवा घंटे की इस नाट्य-प्रस्तुति को दर्शक मंत्रविद्ध से देखते रहे।

पारिजात नागर के प्रकाश-प्रभाव ने नाटकीय प्रभाव द्विगुणित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। नाटक का आरम्भ और अत तो पूरी तौर से प्रकाश-प्रभाव पर आश्रित था। सरकार आलम का ध्वनि-संयोजन भी वातावरण निर्माण मे बहुत सहायक रहा। सभी अभिनेताओं ने अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह मजे ढंग से किया। विशेष रूप से विष्णुदत्त गौड़, शाखा वंद्योपाध्याय तथा राजेन्द्र गुप्त का अभिनय नाटक को चार चांद लगाने में उल्लेखनीय रहा। स्त्री पात्रों में बूढी अंधी औरत के रूप में शीमा रिजवी, पगली के रूप में रीमा भसीन तथा नौजवान अंधी औरत के रूप में अनिता भटनागर का अभिनय प्रभावशाली रहा।

—शिखर भवन, टाटपट्टी, यहियागंज, लखनऊ

# प्रेमचन्द जन्म-शताब्दी
# हिन्दी नाटकों का मंचन

—आनंदा पगार

नासिक में जहाँ मराठी का समृद्ध रंगमंच है, मराठी के प्रख्यात नाटककार, रंग-मंडलियाँ तथा रंगकर्मी सक्रिय हैं, वहाँ पिछले कुछ वर्षों से शनैः शनैः हिन्दी रंगमंच विकसित हो रहा है और कथ्य और प्रस्तुतियों की ताजगी के कारण रंग-जगत में चर्चा का विषय हो गया है। नासिक में १८ से २१ दिसम्बर तक प्रेमचंद जन्म-शताब्दी महोत्सव का आयोजन किया गया था। नासिक के सभी महाविद्यालयों, विद्यालयों, नासिक हिन्दी सभा, सार्वजनिक वाचनालय इत्यादि संस्थाओं द्वारा गठित महोत्सव समिति ने प्रेमचद के साहित्य पर आधारित परिसंवाद कथा-कथन, निबंध तथा एकांकी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया।

महोत्सव का उद्घाटन करते हुए प्रख्यात कवयित्री, आलोचक और रंग-समीक्षक श्रीमती मालती शर्मा ने कहा कि जब तक भूख और प्यास प्रासंगिक है, प्रेमचंद का साहित्य भी प्रासंगिक तथा प्रेरक बना रहेगा। शाम को साइखेड़कर नाट्यगृह में १८ से २१ दिसंबर तक रमेश उपाध्याय-लिखित 'ब्रह्म का स्वाँग', सनत कुमार-लिखित 'सवा सेर गेहूं' तथा 'ठाकुर का कुँआ', बशीर अहमद का 'चिराग की जलन', यासीन खाँ का 'कफ़न' अष्टपुत्रे का 'बकरी खरीद लो' लघुनाट्यों का मंचन हुआ। 'सवा सेर गेहूं' को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया तथा उसे खेलने वाली मंडली (के०टी०एच०एम० कॉलेज) को नासिक हिन्दी सभा द्वारा प्रदत्त चलित ट्रॉफी प्रदान की गयी। 'ठाकुर का कुँआ' दूसरे स्थान पर रहा।

के० टी० एच० एम० कॉलेज की मंडली ने बम्बई में आयोजित अखिल भारतीय नाट्य-स्पर्धा में भी 'सवा सेर गेहूं' का मंचन कर चौथा स्थान प्राप्त किया। इसी मंडली ने [illegible] में लगातार तीसरे वर्ष अंतर्महाविद्यालयीन नाट्य-महोत्सव में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर 'संघवी ढाल' पर अधिकार कर लिया। इस वर्ष इस

मंडली ने सनत कुमार लिखित 'बूढ़े न्याय की कहानी' का मंचन किया था। १९८० में 'सवासेर गेहूं' तथा १९७९ में सनत कुमार-लिखित 'मेमने के निकल पड़े सींग' का नासिक में अनेक मंडलियां मंचन करती रही हैं। इधर सनत कुमार ब्रेख्त के 'तीन टके की नौटंकी' तथा एक अन्य सड़क नाटक का निर्देशन कर रहे हैं, जो सड़कों पर भी खेले जाएँगे।

–C/o महाराष्ट्र बुक डिपो, रविवार पेठ, नासिक (महाराष्ट्र)

# इकतारे की आंख

—प्रकाश खैरवाल

मेघदूत नाट्य-संस्था, चन्द्रपुर (महाराष्ट्र) गत कई वर्षों से हिन्दी रंगमंच को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयत्न शील है।

२१ फरवरी, १९८१ को इस संस्था ने मणि मधुकर-कृत 'इकतारे की आंख' का मंचन किया। नाटक कबीर के जीवन एवं परिवेश को आज के देशकाल और उससे जुड़ी समस्याओं के साथ जोड़ने में सफल है। कबीर को इतिहास एवं समय की सीमाओं को लांघकर आज की परिस्थितियों के बीच खड़ा कर दिया गया है।

युवा निर्देशक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस नाटक को बहुत सूझ-बूझ एवं कल्पना-शीलता के साथ प्रस्तुत किया संगीत एव काव्यात्मक संवाद नाटक की आत्मा हैं। कहीं पर भी निर्देशक की पकड़ ढीली नहीं हुई। लोई एवं महाभैरवी की भूमिकाओं में श्रीमती चंदा खैरवाल ने सशक्त अभिनय किया। ओमप्रकाश वाल्मीकि कबीर की भूमिका में सजीव लगे। अन्तिम दृश्य में कबीर की मृत्यु को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया। अन्य पात्रों में कमाल की भूमिका में विमल राय तथा रैदास की भूमिका में प्रणय कुमार सिन्हा ने चरित्र के साथ न्याय किया।

'इकतारे की आंख' का मंचन कर निर्देशक ने रंगमंच के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का प्रमाण दिया है।

दर्शकों ने इस प्रस्तुति का स्वागत किया। मेघदूत का यह नाटक काफी समय तक याद किया जाता रहेगा। यह संस्था अब तक कई प्रसिद्ध नाटकों का मंचन कर चुकी है, जिनमें प्रमुख हैं— आधे अधूरे (मोहन राकेश), सिंहासन खाली

है (सुशील कुमार सिंह), हिमालय की छाया (वसंत कानेटकर), अब्दुल्ला दीवाना (डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल), प्रस्ताव (चेखव) आदि।

४–डी/टाइप–३, सेक्टर ५, आर्डनेन्स फैक्टरी, चंद्रपुर (महाराष्ट्र)

# वंशनगर का व्यापारी

–आनंद हर्षुल

संभवतः हिन्दी रंगमंच में एक लम्बे अरसे बाद पुनः एवं रायपुर-जैसे छोटे शहर में पहली बार 'रचना' द्वारा शेक्सपियर के बहुप्रचारित सुखान्त नाटक 'मर्चेन्ट आफ़ वेनिस' का भारतेन्दु हरिश्चंद्र-कृत हिन्दी अनुवाद 'दुर्लभ बंधु' (वंशनगर का व्यापारी) पिछले दिनों अभिनीत किया गया, जिसका निर्देशन राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्र अशोक कुमार मिश्र ने किया।

भारतेन्दु के इस अनुवाद में, शेक्सपियर अपनी समूची विशिष्टता एव मौलिकता के साथ भारतीय परिवेश से जुड़े हैं। दरअसल इस अनुवाद से साक्षात्कार भारतीय वेशधारी शेक्सपियर से साक्षात्कार है। अशोक ने अपने निर्देशन में लोक-शैली का उपयोग कर भारतेंदु की इस अनुवाद-विशिष्टता को एक मौलिक सघनता प्रदान की है। लगभग बीस दिनों से भी कम समय में शेक्सपियर को मच पर खड़ा किया गया है, फिर भी उसका रुप उदात्त तथा प्रेक्षक की आँखों को व्यस्त रखने में सक्षम है, पर नाटक की लम्बाई को (संभवतः समय की कमी के कारण) कम करने के उद्देश्य से, संवादों में हुई काटपीट ने कुछ चारित्रों का प्रेक्षक के ऊपर पड़ने वाला स्वाभाविक दबाव नष्ट कर दिया और वे घुटने टेककर बैठ गए। ऐसे चरित्र मंच पर जब-जब भी आए अपनी व्यर्थता बोध से कचोटते गये।

शेक्सपियर अपनी छोटी-छोटी भूमिकाओं में भी अनुभवशील/संवेदनशील अभिनेताओं की मांग करता है, पर इस प्रस्तुति में उन कलाकारों की संख्या अधिक थी, जिनका इस नाटक के तहत रंगमंच मे प्रथम परिचय था, पर फिर भी निर्देशक का कुछ अपरिपक्व अभिनेताओं के बीच से, उनकी मौलिक कमजोरियों का उपयोग कर कुछ परिपक्व अभिनय उभारने का सफल प्रयत्न साफ झलकता है। गोप की महत्वहीन भूमिका को राजेंद्र चतुर्वेदी ने अपने संस्पर्शीय अभिनय से काफी महत्व पूर्ण बना दिया है। वृद्ध गोप के रूप में आनद वर्मा का प्रतिभाशील अभिनेता

को अतिनाटकीयता से बचाकर एक सभ्य हास्य की सरंचना में सफलता प्राप्त की। इस प्रस्तुति में हास्य का स्तर पारिभाषिक रूप से उभरकर सामने आया है।

अतिनाटकीयता हास्य को उभारती तो जरूर है, पर उससे फूहड़पन की संभावना भी बढ़ जाती है। गोप और वृद्ध गोप की भूमिका में अतिनाटकीयता क बावजूद हास्य फूहड़ होने से बचा रहा है, पर आर्य राजपुत्र ( अधिर ) एवं मारकोनी का राजकुमार (आनंद चौबे) के चरित्र में यह फूहड़पन निर्देशक की सतर्कता को पीछे ठेलकर सिर उठाता दीख पड़ा है।

नाट्याभ्यास के दौरान नाटक के तकनीकी पक्षों से कलाकारों का परिचय कराया गया, जिससे सीखने की प्रक्रिया किसी हद तक सरल हो गई थी। इम नाटक के लिए दो अलग सेट्स तैयार किए गए, जो एक बुनियादी अंतर की उपस्थिति में भी अपनी सार्थकता सिद्ध करते थे। पर शैली के सपूर्ण प्रयोग के लोभ में निर्देशक ने लकड़ी के सेट को ही अंतिम रूप से प्रदर्शन हेतु चुना, पर पोलीथीन के परदे पर अकित दृश्य, पोलीथीन के चमकीलेपन के कारण संप्रेषणीय और सरल नहीं हो पाये। संतोष टांक की बांसुरी ने मार्मिक दृश्यों को सरलता प्रदान कीं, रंजना भट्ट के गायन ने भी प्रभावित किया।

—पेंशन बाड़ा, रायपुर—४९२००१

## रंगभारती : रंगकर्मियों एवं नाट्य अध्येताओं की एकमात्र मासिक पत्रिका

रंगभारती का प्रकाशन नक्षत्र अन्तर्राष्ट्रीय द्वारा अगस्त १९७३ से आरम्भ किया गया।

रंगभारती नाटक और रंगमंच के बहुमुखी उन्नयन के लिए समर्पित किसी गर-सरकारी नाट्य-संस्था द्वारा प्रकाशित हिन्दी की अग्रणी एवं एकमात्र मासिक पत्रिका है।

रंगभारती जहाँ एक ओर अपनी बेबाक रंग-समीक्षाओं द्वारा हिन्दी रंगमंच को दिशा प्रदान करने में संलग्न है, वहीं दूसरी ओर रंगमंच के क्षेत्र में अनुसन्धान की भावी दिशाओं का मार्ग भी प्रशस्त कर रही है। रंगभारती के विषय में भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों द्वारा प्रेषित कुछ अभिमत यहाँ दिये जा रहे हैं :

रंगभारती में पारसी रंगमंच पर आपका विस्तृत लेख पढ़ा। आपके तर्क अकाट्य हैं।

—डॉ० दशरथ ओझा, दिल्ली

रंगभारती नाट्य-क्षेत्र में जागरण का मन्त्र फूंकने वाला पत्र है।

—डॉ० रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद

रंगभारती भारतीय रंगमंच की बहुविध जटिल समस्याओं का सुखद समाधान प्रस्तुत करेगी, ऐसी मैं आशा रखता हूँ।

—डॉ० बृजलाल वर्मा, इलाहाबाद

रंगभारती देखकर प्रसन्नता हुई। मेरी बधाई स्वीकार करें।

—रामेश्वर दयाल दुबे, लखनऊ

आपके संयोजन में एक ऐतिहासिक महत्व का कार्य हो रहा है।

— डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित, लखनऊ

अपने क्षेत्र की यह बहुत अच्छी पत्रिका है। ये लोकरंग और रंग-कर्मियों की बहुत ही सेवा कर सकेगी।



—डॉ० महेन्द्र भानावत्, उदयपुर

रंगभारती एक बड़े उद्देश्य की पूर्ति कर रही है।

—राजेन्द्र रघुवंशी, आगरा

यह पत्रिका नाटककारों और रंगकर्मियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

—कृष्ण गोपाल, नई दिल्ली

हिन्दी रंग-आन्दोलन में इस पत्रिका की महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी, ऐसी आशा है।

—डॉ० सिद्धनाथ कुमार, रांची

रंगभारती अन्य पत्रों की तुलना में प्रगतिशील बन पड़ा है।

—प्रो० नरनारायण राय, पूर्णियाँ

रंगभारती पढ़ी। आपका प्रयास स्तुत्य है।

—डॉ० विश्वनाथ गौड़, कानपुर

सामग्री के चयन एवं सम्पादन में आपकी दृष्टि संतुलित आत्मान्वेषण की गहरी प्रक्रिया से जुड़ी है।

—मणि मधुकर, दिल्ली

पत्रिका की बहुमुखी प्रगति के लिए मेरी शुभकामनायें स्वीकार करें।

—डॉ० विमलशंकर नागर, अमरावती

नाट्य-विधा में तनिक भी रुचि रखने वाले व्यक्ति के लिए पत्र अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

—डॉ० शशिप्रभा शास्त्री, देहरादून

रंगभारती को रचनात्मक सहयोग देने का सदैव प्रयत्न करूँगी।

मालती शर्मा, पुणे-३

रंगभारती देखकर आशा बँधी कि उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक आन्दोलन को सफल रूप मिल सकेगा।

—प्रो० रामनिरंजन लाल श्रीवास्तव, नई दिल्ली

रंगभारती द्वारा उत्तर प्रदेश में जो नाट्यान्दोलन प्रारम्भ हुआ है, उसमें मैं अपनी तुच्छ सेवा से थोड़ा भी कुछ कर सका, तो मेरा सौभाग्य होगा।

—कृष्णमोहन मिश्र, वाराणसी

रंगमंच सम्बन्धी विभिन्न प्रवृत्तियों तथा ग्रन्थ-समीक्षा आदि बातों के कारण रंगभारती अच्छी बन पड़ी है।



—डॉ० दुर्गा दीक्षित, पुणे

रंगभारती पूरे प्रदेश के रंग-जगत का प्रतिनिधित्व करने वाली एक मात्र पत्रिका है।

—सतीश चित्रवंशी, इलाहाबाद

भारत के विभिन्न भागों में रंगमंच के क्षेत्र में हो रही विभिन्न गतिविधियों से अवगत कराने में यह पत्रिका सहयोगी होगी।

—चिरंजी लाल माथुर, जयपुर

भावी शोध-छात्रों के लिए यह पत्रिका दस्तावेज का कार्य करेगी।

—डॉ० अवधेश अवस्थी, कन्नौज

रंगभारती का हिन्दी रंगमंच १९७७ अंक मिला।...अच्छी सामग्री जुटायी है, खूब मेहनत की है। हिन्दी क्षेत्रों के साथ आपने कलकत्ता और पुणे को भी ले लिया है। वधाई !

—वेंकटलाल ओझा, हैदराबाद

रंगभारती के ५-६ अंक अब तक प्राप्त हुए। अंक नई सामग्री से युक्त रहते हैं।

—डॉ० सुधाकर गोकाककर, कोल्हापुर

## आगा 'हश्र' विशेषांक पर विद्वानों की प्रतिक्रिया

रंगभारती' के दो अंक मिले।......हार्दिक वधाई देता हूँ। खूब निष्ठा है आप में, आपके साथियों में—सबको मेरी हार्दिक मंगल कामनाएँ दें।

—डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, नयी दिल्ली

आगा हश्र काश्मीरी पर 'रंगभारत्ती' के अंक प्राप्त हुए। यह काम बहुत ही महत्वपूर्ण हुआ है। इनमें इतनी सूचना एकत्रित है, जो बाद में शोध-छात्रों के लिये बहुत महत्वपूर्ण होगी। अंक संग्रहणीय हैं।

—दया प्रकाश सिन्हा, नई दिल्ली

आगा 'हश्र' अंक देख गया हूं। हिन्दी रंगमंच की नींव रखने वाले रंगकर्मियों में आगा 'हश्र, का नाम आता है। उन पर संस्मरणात्मक सामग्री इस अंक में दी गई है, मगर मुझे मूल्यांकनपरक निबन्धों की भी अपेक्षा थी। जरूरत है कि हम अपनी इन महान् परम्पराओं का उचित मूल्यांकन करें और [illegible] में इन्हें उचित स्थान तथा मर्यादा दें। बंगला नाट्य-साहित्य में गिरीश घोष, डी० एल०

राय आदि को जो मान्यता है, वह हम आगा 'हश्र' और 'नरसी' आदि को क्यों नहीं दे सकते ? साहित्यिक और गैर-साहित्यिक का यह बँटवारा कितना मूर्खतापूर्ण है ? हम किसका नुक्सान कर रहे हैं !

—डॉ० महेश्वर, नई दिल्ली

'हश्र' जी के बारे में सामग्री पढ़कर अति रुचिकर प्रसंग सामने आये। अब एक प्रकार से अज्ञात साहित्यकार को आपने प्रकाश किया, यह बहुत ही सुन्दर कार्य हुआ है। ......प्राचीन चित्र बहुत दिलचस्प रहे। सम्पादक, संयोजक एवं वितरण-व्यवस्थापक को हार्दिक बधाई ! ......आगे भारतेन्दुकालीन नाटकों का भी अंक निकलें। कई सामग्री अब तक अप्रकाशित प्राप्त हुई हैं।

— गिरीशचन्द्र, भारतेन्दु भवन, काशी

'रंगभारती' के उपयोगी अंकों के लिये बधाई !

— राजेन्द्र रघुवंशी, आगरा

आगा 'हश्र' विशेषांक की दो कड़ियाँ प्राप्त हुई। इनके माध्यम से हिन्दी नाटक की अवधारणा में तथा पारसी थिएटर पर भी समुचित प्रकाश पड़ेगा। जहाँ यह सामग्री सामान्य पाठक के लिये सुरुचिपूर्ण है, वही अनुसंधित्सुओं के लिए तथ्य-पूर्ण विवेचन है। बधाई !

— अनूप सेठी, धर्मशाला (काँगड़ा)

इस अंक (जनवरी ८०) के सारे लेख पढ़ गया और बड़े रोचक लगे तथा स्वर्गीय हश्र के विषय में उपयोगी जानकारी मिली।

इतना सुन्दर अक निकालने के लिये बधाई ! श्री हश्र के सम्बन्ध में यह बड़ा ही सराहनीय कार्य हुआ।

— श्री लक्ष्मण प्रसाद भारद्वाज
अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य, लखनऊ

मुझे 'रंगभारती' का आगा हश्र अंक भेजा, यह आपकी सहृदयता है। मैं कृतकृत्य हूँ—कारण आगा 'हश्र' के बारे में जब से कुछ पढ़ा था तो और कुछ जानने का संकल्प गढ़ा था, वह पूरा हुआ। आपने सचमुच में इस मिस हिन्दी नाट्य धर्मियों की बड़ी सेवा की है।



—ओंकारश्री, उदयपुर

# रंगभारती का निवेदन

## सहयोगी लेखक बन्धुओं से

- 'रंगभारती' रंगकर्मियों की एक मात्र संघर्षरत मासिक पत्रिका है। अतएव कृपया नाट्य-विवरण अथवा सूचनात्मक सामग्री भेजते समय पत्रिका के सीमित आकार को ध्यान में रखें तथा सारगर्भित संक्षिप्त रचनायें ही भेजें।
- रचनायें कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर साफ़-साफ़ हस्तलिखित अथवा टंकित होनी चाहियें।
- प्रत्येक रचना के आरम्भ और अन्त में लेखक के स्पष्ट एवं पूर्ण हस्ताक्षर, रचना के अन्त में स्थायी पत्र-व्यवहार के पते का होना नितान्त आवश्यक है।
- अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए मात्र डाक-टिकट ही भेज देना पर्याप्त नहीं है। टिकट लगा लिफाफा साथ भेजें।
- प्रकाशनार्थ भेजी गई रचना मौलिक तथा अप्रकाशित होनी चाहिए। अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की स्वीकृति का संलग्न होना आवश्यक है।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों के साथ सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है। विवाद की स्थिति में सम्पूर्ण दायित्व लेखक का होगा।
- प्रकाशित रचनाओं पर किसी प्रकार का कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाता है। अतः कृपया इस सन्दर्भ में पत्र-व्यवहार न करें।
- प्रकाशनार्थ रचनायें सीधे 'रंगभारती' के प्रधान कार्यालय पर ही भेजें तथा समस्त पत्र-व्यवहार प्रधान-कार्यालय से ही करें।

## सहयोगी नाट्य संस्थाओं से

- नाट्य-संस्थाओं से अनुरोध है कि अपने प्रदर्शित नाटकों का विवरण भेजते समय फोटो-चित्रों के स्थान पर पत्रिका के अनुरूप आकार में चित्रों के ब्लॉक

भेजें अथवा प्रत्येक चित्र के साथ ब्लॉक बनवाने के लिए 20-00 रु० प्रति चित्र की दर से धनराशि अवश्य भेजें। ये ब्लॉक प्रकाशन के उपरान्त रजिस्टर्ड पार्सल द्वारा सम्बन्धित संस्था को वापस भेज दिए जायेंगे। सामान्यतः प्रत्येक नाट्य-विवरण के साथ एक ही चित्र प्रकाशित हो सकेगा।

- आजीवन सदस्यता ग्रहण कर लेनेवाली संस्थाओं के चित्रों के ब्लॉक पर होने वाले व्यय को हम स्वयं वहन करेंगे । इच्छुक संस्थायें 251-00 रु० भेजकर आजीवन सदस्यता ग्रहण कर सकती हैं।

## नाट्य साहित्य के प्रकाशकों से

- 'नये प्रकाशन' के अन्तर्गत उन्हीं पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित होगी जिनकी दो प्रतियां प्रधान कार्यालय को प्राप्त होंगी। पुस्तकें प्राप्त न होने की दशा में सीधे भेजी गयी पुस्तक-समीक्षाओं का प्रकाशन सम्भव न होगा।

## रंगकर्मियों से

- कृपया रंगभारती का वार्षिक शुल्क रुपये बारह मात्र आज ही भेजकर स्वयं वार्षिक ग्राहक बनें तथा अपने मित्रों को भी ग्राहक बनायें।

'रंगभारती' आप सभी रंगकर्मियों व रंग-प्रेमियों की अपनी पत्रिका है। हम इसके स्तरीय उन्नयन के लिए कटिबद्ध हैं और अपने सभी सहयोगियों, रंगकर्मियों, रंग-प्रेमियों व नाट्य-संस्थाओं से सक्रिय सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

संपर्क सूत्र :

कानपुर कार्यालय :
छायालोक
111-ए/183, अशोक नगर
कानपुर-208012

प्रधान कार्यालय :
कोठी साह जी
मिर्ज़ामंडी, चौक
लखनऊ-226003

इलाहाबाद कार्यालय :
153 ए, अमृत बाग
सुलेम सराय
इलाहाबाद-211001

# रंगभारती में प्रकाशित मंचन योग्य नाटक

## पूर्णकालिक नाटक

**दायरे** : लेखक : ओम तिवारी अरुण
अंक : अगस्त तथा सितंबर, 1980 ( दो किश्त में )

**सोनाली** : प्राग जी डोसा के गुजराती नाटक का शरद नागर-कृत हिन्दी रूपान्तर।
अंक : अप्रैल, मई एवं जून 1981 ( तीन किश्त में )

## लघु नाटक

**गुब्बारे** : लेखक : कार्तिक अवस्थी
संयुक्तांक : नवम्बर 77—फरवरी 78

**चौकियाँ कौन तोड़ेगा** : लेखक : राजानंद
अंक : जुलाई, 1980

**दुलहिन पहाड़ की** : इजीबुल ऐन्ड्रयूज़ के एकांकी का मृदुला गर्ग कृत हिन्दी रूपान्तर।
अंक : जनवरी, 1981

**प्रेमिका परिचय** : महाकवि निराला की कहानी का कैलाश कल्पित-कृत नाट्यरूपान्तर।
अंक : मार्च, 1981

के

# आगा हश्र विशेषांक



नवम्बर, 1979 परिचयांक

दिसम्बर, 1979 व्यक्ति

जनवरी, 1980 कृति

रुपये बारह पैसे पचास मात्र मनीआर्डर द्वारा भेजकर तीनों अंक रजिस्टर्ड बुकपोस्ट द्वारा प्राप्त करें।

केवल सीमित प्रतियां ही शेष हैं, अतः अपना क्रयादेश शीघ्र भेजें।

# रंगभारती की पुरानी फ़ाइलें

पुस्तकालयों के लिए अब पक्की जिल्द में उपलब्ध

**प्रथम खण्ड**—अगस्त, 1973 से फरवरी, 1975 तक पकाशित सभी अंक; डबल क्राउन आकार; पृष्ठ संख्या 525 [ इस खण्ड की कुछ ही प्रतियां उपलब्ध हैं ]

**द्वितीय खण्ड**—जुलाई, 1977 से जून, 1979 तक (हिन्दी रंगमंच 1977 विशेषांक सहित); डिमाई आकार; पृष्ठ संख्या 530

**तृतीय खण्ड**—जुलाई, 1979 से जून, 1980 तक ( हिन्दी रंगमंच 1978 तथा आगा हश्र विशेषांकों सहित ); डिमाई आकार; पृष्ठ संख्या 462

प्रत्येक खंड का मूल्य 40-00 रु०

रजिस्टर्ड डाक-व्यय 5-00 रु० प्रति खण्ड अतिरिक्त

तीनों खण्डों का सम्मिलित मूल्य मात्र 100-00 रु०

## शोध-छात्रों के लिए विशेष छूट

अपने क्रयादेश निम्न पते पर भेजें—

वितरण-व्यवस्थापक

**रंगभारती**



कोठी साह जी, मिर्जामण्डी, चौक, लखनऊ-226003

द्वारा आयोजित

## क़ौमी एकता नाट्य-लेखन प्रतियोगिता

में

युवा नाटककारों से क़ौमी एकता
पर आधारित
नाट्य-रचनाएँ आमन्त्रित हैं

सर्वश्रेष्ठ कृति पर 501-00 रुपए
का

## माधव शुक्ल पुरस्कार

विस्तृत जानकारी के लिए चौथे कवर पर देखें

रंगभारती डाक पंजीकृत संख्या : I.W/NP-95
भारत सरकार के न्यूज़पेपर रजिस्ट्रार की रजिस्ट्री संख्या R.N. 25142/73

# रंगभारती

द्वारा आयोजित

## कौमी एकता नाट्य-प्रतियोगिता

की नियमावली

- सर्वश्रेष्ठ नाट्य-कृति का चयन निर्णायक-मण्डल द्वारा किया जायेगा। मण्डल का निर्णय अन्तिम और मान्य होगा।
- मण्डल द्वारा चुनी हुई सर्वश्रेष्ठ रचना पर 501-00 रु० का नकद पुरस्कार एक विशेष समारोह में नाटककार को प्रदान किया जायेगा।
- पुरस्कृत नाट्य-रचना की घोषणा 'रंगभारती' के जुलाई, 1981 अंक में की जायगी।
- पुरस्कृत रचना को 'रंगभारती' के अक्तूबर, 1981 अंक में बिना किसी अतिरिक्त मान-देय के प्रकाशित किया जायेगा।
- पुरस्कृत रचना को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने का अधिकार 'रंगभारती' द्वारा सुरक्षित रहेगा तथा पुस्तक रूप में प्रकाशित होने पर विक्रित पुस्तकों पर लेखक को 10% रायल्टी एवं 10 प्रतियाँ (निःशुल्क) प्रदान की जायेंगी।
- नाट्यालेख की मंचन-अवधि कम-से-कम सवा घंटा होनी चाहिए।
- आलेख प्रत्येक दशा में अप्रकाशित होनी चाहिए।
- आलेख कागज के एक ओर सुस्पष्ट हस्तलिखित अथवा टंकित होना चाहिए।
- आलेख की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें। पुरस्कृत न होने की दशा में आलेख डाक-व्यय प्राप्त होने पर ही वापस किया जा सकेगा।
- आलेख रजिस्टर्ड डाक से ही भेजें। खो जाने की दशा में 'रंगभारती' का कोई दायित्व न होगा।
- 'रंगभारती' से सम्बद्ध कोई भी व्यक्ति अथवा उसके परिवार का सदस्य इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेगा।
- अपनी अप्रकाशित नाट्य-रचना आप इस पते पर भेजकर प्रतियोगिता में शामिल हो सकते हैं।

डॉ० शरद नागर
अवैतनिक संयोजक
कौमी एकता नाट्य-प्रतियोगिता
रंगभारती', कोठी साह जी, मिर्जामण्डी, चौक, लखनऊ-226003

महासचिव, [illegible] चौक, लखनऊ-226003 द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।
मुद्रक : विद्या-मन्दिर प्रेस, रानीकटरा, लखनऊ—फोन 82663।